उच्चारण की गलतियाँ : हमारी समझ और उपाय

भारती पंडित

शुरुआती कक्षाओं में भाषा की पढ़ाई में शुद्धता का विषय शिक्षकों की चिन्ता का प्रमुख विषय रहता है। इस चिन्ता के चलते बच्चों के उच्चारण दोष और इसे सुधारने या शुद्ध उच्चारण के लिए नाना प्रकार के प्रयास किए जाते हैं। आज ये प्रयास भाषा पढ़ाई के मकसद में बड़ी बाधा के तौर पर देखे जाते हैं। यह आलेख भाषा शिक्षण में उच्चारण के विविध निहितार्थों पर विचार प्रस्तुत करता है और सवाल उठाता है कि क्या उच्चारण को एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में देखा जाना चाहिए? भाषा सीखने में उच्चारण की समस्या कहाँ से आई होगी? क्या यह जरूरी नहीं है कि भाषा की कक्षा में शिक्षकों का सारा ध्यान शब्दों के सही उच्चारण पर टिके रहने की बजाए भाषा के अन्य सारे कौशलों के विकास की ओर भी रहे? क्या शिक्षकों का उच्चारण बच्चों के उच्चारण को प्रभावित करता है? आदि। सं.

सही बोलो, सही उच्चारण करो... यह जुमले अधिकांश शिक्षकों की रोजमर्रा की बातचीत का हिस्सा बन चुके हैं। भाषा शिक्षण के समय एक बड़ी परेशानी बच्चों द्वारा शब्दों का उच्चारण सही तरीके से न किया जाना होता है और इस के चलते प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में शिक्षकों का काफी समय उच्चारण की त्रुटियों को ठीक करवाने में जाया होता है।

पर क्या वास्तव में उच्चारण दोष को इतनी भयानक समस्या की तरह देखा जाना चाहिए जिस के लिए कक्षा शिक्षण के लिए उपलब्ध समय का अधिकांश हिस्सा खर्च किया जाए और इस के बाद भी नतीजा सिफर ही निकले? इस बात से कोई गुरेज नहीं है कि किसी भाषा को बोला जाता है तो उस का सही उच्चारण ही प्रभावी रूप से हमारे सामने आता है और उसी के आधार पर हम तय करते हैं कि उस व्यक्ति की भाषा पर पकड़ अच्छी है या नहीं। पर यहाँ फिर एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या शब्दों को सही तरीके से मात्र उच्चारित करने या शुद्ध बोलने से ही किसी का भाषा पर पाण्डित्य तय हो जाता है और किसी का भाषा पर अधिकार खारिज हो जाता है या इसके लिए कुछ और बातों पर भी सोचना आवश्यक है? यदि प्रभावी रूप से बोलना भाषा के कौशलों में से एक है और कोई व्यक्ति कुछ शब्दों के अशुद्ध उच्चारण के साथ भी यदि अपनी बात को सही तरीके से कह पाने में समर्थ है, कायदे की बात तर्क सहित कह पा रहा है तो क्या उसे हम अयोग्य मानेंगे?

उच्चारण दोष पर बात करने से पहले हमें यह भी समझना होगा कि भाषा सीखने में उच्चारण की अवधारणा आई कहाँ से होगी। हमारी वाचिक परम्परा में विविध भाषाओं में बोली गई विशिष्ट सामग्री को सुनकर ज्यों का त्यों सुना देना शिक्षण का प्रमुख हिस्सा हुआ करता था। बोली जा रही सामग्री पूरी तरह से समझ में भी आए, इस पर सम्भवतः ज़ोर कम था। आज भी विविध धर्मों में कर्मकाण्डों में बोले जा रहे मंत्रों, आयतों या वर्सेस के अर्थ उस का उच्चारण करने वालों को भी ठीक से मालूम नहीं होते।

उस समय की व्यवस्था भिन्न थी, सन्दर्भ भिन्न

थे, मगर लिपि के प्रचलन और ग्रंथों के लिपिबद्ध हो जाने के बाद भी तब से लेकर आज तक शिक्षा की यही परिपाटी चलती आ रही है जिस में छपी हुई सामग्री के उच्चारण पर ही अधिक बल दिया जाता है।

वास्तव में हर भाषा शिक्षक को यह समझना होगा कि भाषा की कक्षा में उच्चारण की आवश्यकता पड़ती कब-कब है और किसलिए। प्रारम्भिक कक्षाओं में जब हम बच्चों को पढ़ना सिखा रहे होते हैं तो उस दौरान हम उन्हें शब्दों का उच्चारण करके पढ़ना सिखाते हैं। यहाँ मूल उद्‌देश्य होता है ध्वनि और अक्षर के सहसम्बन्ध को समझाना, अर्थात् यह दर्शाना कि बोला जाने वाला शब्द लिखने पर कैसा दिखाई देता है या लिखा कैसे जाता है।

एक बार यदि यह सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है तो बच्चे के लिए सुनी गई बात को और अपने मन में सोची जा रही बात को लिखना आसान हो जाता है। (श्रुतलेख की प्रक्रिया इसी समझ पर आधारित है।) इसके अलावा कहानी-कविता को हाव-भाव सहित सुनाने के लिए भी सही उच्चारण काम आता है (हालाँकि स्थानीय भाषा के शब्दों या लहज़े का प्रयोग कहानी-कविताओं को और मज़ेदार बना देता है।) पर सही उच्चारण मात्र सिखा देना भाषा शिक्षण का एकमेव उद्‌देश्य नहीं है। लिखी और बोली जा रही बात को समझना, समझकर पढ़ पाना, अपनी बात लिख पाना, विश्लेषण करना, वर्गीकरण करना, तर्क गढ़ना, प्रश्न करना आदि भी भाषा शिक्षण के ही उद्‌देश्य हैं, जिन के विकास के लिए प्राथमिक कक्षाओं से ही प्रयास किए जाना आवश्यक है। अतः क्या यह ज़रूरी नहीं है कि भाषा की कक्षा में शिक्षकों का सारा ध्यान शब्दों के सही उच्चारण पर टिके रहने की बजाए इन सारे कौशलों के विकास की ओर भी रहे?

यहाँ यह हरगिज़ नहीं कहा जा रहा है कि किसी भाषा में शब्दों का गलत उच्चारण मान्य किया जाना चाहिए और उसे सुधारने के उपाय नहीं किए जाने चाहिए पर इस सबसे पहले शिक्षक होने के नाते हमें यह भी जानना होगा कि उच्चारण दोष होते क्यों हैं। हम सभी जानते हैं कि हमारे शरीर में अवस्थित स्वर यंत्र या वोकलकॉर्ड की सहायता से हम बोलते हैं और हमारी जीभ, तालू और दाँत बोलने में हमारी सहायता करते हैं। हम बचपन में जब अपनी मातृभाषा बोलना सीखते हैं तो उस में जिस तरह की ध्वनियाँ होती हैं, उन के उच्चारण के लिए हमारी स्वर यंत्रियाँ और जीभ अनुकूलित हो जाते हैं। बच्चों के साथ भी यही होता है। वे अपनी मातृभाषा सुन-सुनकर सीखते हैं और उनकी स्वर यंत्रियाँ उस भाषा की ध्वनियों के उत्पादन के लिए अनुकूलित हो जाती हैं। जब वे स्कूल आते हैं तो एक नई भाषा से उनका सामना होता है। यदि उन की मातृभाषा और स्कूल की भाषा की ध्वनियाँ लगभग समान हैं तो उन्हें उनका उच्चारण करने में ज्यादा दिक्कत नहीं आएगी मगर यदि कोई ऐसी ध्वनि है जो उनकी भाषा में है ही नहीं तो उस ध्वनि का उच्चारण उन्हें सीखना होगा या दूसरे शब्दों में उस ध्वनि के लिए अपने स्वर यंत्र

हम बचपन में जब अपनी मातृभाषा बोलना सीखते हैं तो उस में जिस तरह की ध्वनियाँ होती हैं, उन के उच्चारण के लिए हमारी स्वर यंत्रियाँ और जीभ अनुकूलित हो जाते हैं। बच्चों के साथ भी यही होता है। वे अपनी मातृभाषा सुन-सुनकर सीखते हैं और उनकी स्वर यंत्रियाँ उस भाषा की ध्वनियों के उत्पादन के लिए अनुकूलित हो जाती हैं। जब वे स्कूल आते हैं तो एक नई भाषा से उनका सामना होता है। यदि उन की मातृभाषा और स्कूल की भाषा की ध्वनियाँ लगभग समान हैं तो उन्हें उनका उच्चारण करने में ज्यादा दिक्कत नहीं आएगी मगर यदि कोई ऐसी ध्वनि है जो उनकी भाषा में है ही नहीं तो उस ध्वनि का उच्चारण उन्हें सीखना होगा या दूसरे शब्दों में उस ध्वनि के लिए अपने स्वर यंत्र को अनुकूलित करना होगा।

को अनुकूलित करना होगा। उदाहरण के लिए मराठी में उपयोग में लाई जाने वाली 'ळ' की ध्वनि हिन्दी में नहीं है अतः हिन्दी भाषी बच्चा मराठी के उन शब्दों को जिनमें ळ ध्वनि आती है, ल की तरह या ड की तरह उच्चारित करेगा और इस ध्वनि को शिक्षक द्वारा लाख प्रयास किए जाने पर भी उस के द्वारा सही उच्चारित नहीं किया जा सकेगा। इसे आप दक्षिण भारतीय लोगों के मामले में भी आसानी से देख सकते हैं जहाँ वे भ, फ, घ, झ का उच्चारण ब, प, ग, ज जैसा करते हैं। ऐसा उस ध्वनि से अनुकूलित न होने के कारण या उन की भाषा में इस तरह की ध्वनियों का प्रयोग न होने के कारण होता है। इसीलिए वे घर को गर, झण्डा को जण्डा और भूत को बूत कहते नज़र आते हैं। मूल ध्वनियों की जगह इन्हें सुनना अटपटा भले ही लगे मगर घर और गर यदि पूरे वाक्य के सन्दर्भ में आ रहा हो और उस भाषा में उस तरह के शब्द का कोई दूसरा अर्थ नहीं हो तो अर्थ समझने में दिक्कत नहीं होती और यदि बातचीत का मूल उद्देश्य अर्थ को समझना है तो इस से अर्थ में विशेष बाधा उत्पन्न नहीं होती, भले ही शब्द का उच्चारण व्याकरणिक दृष्टि से सही न हो।

> यदि किसी भाषा में दो व्यंजन एक साथ आने वाले शब्द न हों तो हिन्दी के स्त्री, स्नेह, स्नान शब्दों के लिए उन भाषाभाषी लोगों का इस्तरी, इस्नेह और अस्नान या इस्नान बोलना स्वाभाविक है क्योंकि उन के लिए एक साथ दो या तीन व्यंजन उच्चारित करना सम्भव नहीं है। इसी तरह पंजाबी भाषा में आधे अक्षर से शुरू होने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं होता अतः उस भाषा को बरतने वाले लोगों को स्टेशन, स्कूल, स्टाल, क्रम आदि को सटेशन, सकूल, सटाल, करम आदि बोलते देखा जा सकता है।

इस के साथ-साथ यह भी ध्यान देना होगा कि हर भाषा की शब्द संरचना उस के नियमों के अनुरूप हुआ करती है। सभी भाषाओं में शब्द सामान्यतः व्यंजन-स्वर-व्यंजन-स्वर के क्रम में व्यवस्थित किए जाते हैं। शब्द के आरम्भ में एक साथ दो से ज्यादा व्यंजन प्रायः नहीं आते, उन के बाद स्वर का प्रयोग करना ही पड़ता है, और ये भी कुछ खास व्यंजन ही होते हैं। अब यदि किसी भाषा में दो व्यंजन एक साथ आने वाले शब्द न हों तो हिन्दी के स्त्री, स्नेह, स्नान शब्दों के लिए उन भाषाभाषी लोगों का इस्तरी, इस्नेह और अस्नान या इस्नान बोलना स्वाभाविक है क्योंकि उन के लिए एक साथ दो या तीन व्यंजन उच्चारित करना सम्भव नहीं है। इसी तरह पंजाबी भाषा में आधे अक्षर से शुरू होने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं होता अतः उस भाषा को बरतने वाले लोगों को स्टेशन, स्कूल, स्टाल, क्रम आदि को सटेशन, सकूल, सटाल, करम आदि बोलते देखा जा सकता है। यहाँ यदि उच्चारण भिन्न होने के बाद भी अर्थ समझने में दिक्कत नहीं होती तो क्या थोड़ी रियायत नहीं बरती जानी चाहिए?

इसके अलावा एक और बात समझनी होगी। यदि बच्चे की मूल भाषा और स्कूल की भाषा की सभी ध्वनियाँ समान हैं पर उस के आसपास चाहे घर हो या स्कूल, कुछ शब्दों को गलत ही बोला जाता रहा है तो वह उन शब्दों को उसी तरह से बोलेगा। स और श की गलतियाँ इस का सटीक उदाहरण हैं जहाँ लोग शाला को साला और सोशल को शोशल कहते सुनाई देते हैं। हम लोगों में से भी कितने ही लोग आज भी इस तरह की गलतियाँ करते नजर आते हैं। क्या हमारे शिक्षकों ने इन्हें सुधारने के प्रयास नहीं किए थे? हाँ, बहुत किए थे मगर वे असफल साबित हुए क्योंकि शायद उन के तरीके मुफ़ीद नहीं थे।

सौ बात की एक बात यह कि बच्चों के उच्चारण से पहले हम अपने उच्चारण पर भी गौर कर लें क्योंकि हम शिक्षक इस बात को तो ज़ोर देकर गर्व के साथ कहते हैं कि हिन्दी ऐसी भाषा है जो जिस तरह से बोली जाती है, वैसी ही लिखी जाती हैं (जबकि सभी भारतीय

भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था ऐसी है) और फिर भी हिन्दी के कई शब्दों का गलत उच्चारण करते हैं। सम्भव है ऐसा स्थानीय भाषा के प्रभाव के कारण हो और अब वह उच्चारण इतना रूढ़ हो गया है कि हम उसी उच्चारण को ही सही मानने लगे हैं। रेफ, पदेन और ऋ की ध्वनि का फर्क हम अपने उच्चारण में नहीं ला पाते, ए और ऐ की ध्वनि, ओ और औ की ध्वनि का वास्तविक उच्चारण नहीं कर पाते, श और स को एक-सा बोलते हैं। जैसे-पौधा को हम सामान्यतः पॉधा के रूप में बोलते हैं, पैसा को पेसा या पइसा की तरह, कृपा को क्रिपा या क्रपा की तरह। ऐसे कई शब्द हैं जिन के गलत उच्चारण के कारण ही बच्चे श्रुतलेख सही तरीके से नहीं लिख पाते। यानी हम उच्चारण गलत करते हैं और बच्चों से अपेक्षा होती है कि वे गलत उच्चारण सुनकर भी सही शब्द लिख दें। क्या यह ज्यादती नहीं है? इस के लिए तो यह करना होगा कि बच्चों को यह बताया जाए कि जो शब्द बोलने में क्रिपा, क्रपा या किरपा की तरह बोला जा रहा है, उसे लिखा कृपा जाता है। यानी शब्द की सही वर्तनी सीखने पर ध्यान दिया जाए। इस के साथ ही यदि उच्चारण में सुधार का आग्रह है तो पहले अपने आप पर भी काम करना शुरू करें क्योंकि बच्चे उच्चारण सुनकर भी सीखते हैं।

अब इस बात पर आते हैं कि उच्चारण दोष ठीक किस तरह होते हैं। अनुभव बताते हैं कि कई बार उच्चारण दोष समय के साथ ठीक हो जाते हैं, कभी शिक्षक या अन्य वयस्कों के ध्यान दिलाने से तो कभी अपने साथियों द्वारा ही इंगित किए जाने से। एक बार अहसास हो जाने के बाद उन ध्वनियों को बार-बार सुनकर और बोलकर स्वर यंत्रों को उन ध्वनियों के लिए अनुकूलित किया जा सकता है मगर यह सब कुछ दिन या कुछ महीनों में नहीं होता। शायद सालों लगें... साथ ही यह तब तो बिलकुल नहीं हो सकता जब इन गलतियों के लिए बच्चों को लगातार टोका जा रहा हो या अपमानित किया जा रहा हो। सीखना डर और अपमान के माहौल में तो हरगिज़ नहीं हो सकता। हाँ यह हो सकता है कि शिक्षक द्वारा एक बार इंगित कर दिए जाने के बाद बच्चे स्वयं उस दोष को दूर करने के प्रयास में लग जाएँ और सफलता हासिल कर लें।

अनुभव बताते हैं कि कई बार उच्चारण दोष समय के साथ ठीक हो जाते हैं, कभी शिक्षक या अन्य वयस्कों के ध्यान दिलाने से तो कभी अपने साथियों द्वारा ही इंगित किए जाने से। एक बार अहसास हो जाने के बाद उन ध्वनियों को बार-बार सुनकर और बोलकर स्वर यंत्रों को उन ध्वनियों के लिए अनुकूलित किया जा सकता है मगर यह सब कुछ दिन या कुछ महीनों में नहीं होता। शायद सालों लगें... साथ ही यह तब तो बिलकुल नहीं हो सकता जब इन गलतियों के लिए बच्चों को लगातार टोका जा रहा हो या अपमानित किया जा रहा हो। सीखना डर और अपमान के माहौल में तो हरगिज़ नहीं हो सकता।

और फिर यह भी तो देखना होगा न कि एक कक्षा में यदि दो या तीन प्रतिशत बच्चे ही उच्चारण में गलती करते हैं और इस के बावजूद भाषा के कौशलों को आसानी से आत्मसात कर पा रहे हैं तो क्या यह उपलब्धि काफी नहीं है? उन के द्वारा कही गई बात यदि समझ में आ रही है तो बातचीत का उद्देश्य तो पूरा हो ही रहा है न। हाँ यह हो सकता है कि उन के द्वारा गलत उच्चारित किए जा रहे शब्दों को उन्हें बार-बार सुनने का मौका दिया जाए, वह भी उन्हें बिना अपमानित किए बिना अपराधी बनाए तो शायद सुधार सम्भव है। इस के लिए एक उपाय यह हो सकता है कि कक्षा में अधिकांश बच्चों द्वारा गलत उच्चारण के साथ बोले जा रहे शब्दों की सूची बनाई जाए और उन शब्दों को किसी कहानी या पाठ्य में पिरोकर बार-बार सुनाया जाए और दिखाया जाए। देखने और सुनने के बीच के समन्वयन से काम अधिक आसान हो

जाएगा। यह भी हो सकता है कि जब वे वह शब्द गलत उच्चारण के साथ बोलें तो आप बिना गलती इंगित किए उस शब्द को सही तरीके से उच्चारित कर दें, आदि।

और यदि इसके बाद भी सुधार न हो सके तो मान लें कि इस के लिए अधिक समय लगेगा। तो फिर क्यों न ध्यान भाषा के अन्य कौशलों के विकास में लगाया जाए?

उच्चारण की गलतियाँ : हमारी समझ

जब से समझ आई, अपनी पढ़ाई के दौरान कक्षाओं में शिक्षकों को हिन्दी सिखाते समय उच्चारण पर बेहद ज़ोर देते और जिन बच्चों का उच्चारण शिक्षकों के मुताबिक सही नहीं होता, उन पर अत्यधिक समय खर्च करते और परिश्रम करते ही देखा। मेरी कक्षा में अधिकांश बच्चे बुन्देली बोलने वाले थे जिन के कई शब्दों के उच्चारण उन की अपनी भाषा से प्रभावित हुआ करते थे। सौभाग्य से मेरा उच्चारण शिक्षकों की दृष्टि से सही था (इसमें मेरी मातृभाषा मराठी का बड़ा योगदान रहा जिस की ध्वनियाँ लगभग हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी से मिलती-जुलती थीं।) अतः मुझे कक्षा में अक्सर पाठ पढ़ने के लिए कहा जाता और बाकी बच्चों को उस का अनुसरण करने का निर्देश दिया जाता। साल दर साल यह प्रक्रिया चलती रही मगर छठी से आठवीं में जाने के बाद भी उन बच्चों के उच्चारण में कोई फर्क नहीं आया।

अध्यापन कार्य को पेशे के रूप में अपनाने और हिन्दी विषय का अध्यापन करते समय मुझे भी थोड़ा-बहुत इस समस्या से दो-चार होना पड़ा। उस समय मुझे अपने शिक्षकों द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं और उन की असफलता का ख़्याल आया। और यह भी समझ में आया कि उच्चारण सुधारने के लिए कम से कम उस तरह की प्रक्रिया से काम बनेगा नहीं। फिर यह भी भान हुआ कि यदि भाषा का मुख्य कार्य एक-दूसरे की बातों को समझना है तो उच्चारण उस में उतनी बाधा तो नहीं डाल रहा है यानी बात समझ में तो आ रही है, तो फिर क्यों न इस उच्चारण वाले मसले को थोड़ा किनारे रखकर भाषा सीखने के अन्य आयामों पर काम किया जाए। इस के लिए कुछ प्रयास किए और समझ में आया कि और भी बातें हैं भाषा में उच्चारण के सिवा।

पिछले पाँच वर्षों में शिक्षकों के साथ पढ़ने-लिखने की प्रक्रियाओं पर काम करते समय उन का उच्चारण के प्रति आग्रह समझ में आया। साथ ही यह भी कि केवल उच्चारण सही होने को ही पढ़ने की दक्षता मान लिया जाता है, समझ का उस से कोई ताल्लुक नहीं होता। इसी के चलते माध्यमिक कक्षाओं में भी हर विषय में मुखर या सस्वर वाचन कक्षा प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बना हुआ है और इस प्रक्रिया में मौन वाचन यानी खुद पढ़कर समझने का स्थान न के बराबर है। इस पर बात करने पर शिक्षकों का खासा विरोध भी समझ में आता है। गोया अपनी धारणाओं को गलत साबित कर पाना अक्सर कठिन कार्य होता है।

कार्यशालाओं और अन्य बैठकों के दौरान हुई बातचीत से यह समझ में आया कि यदि उच्चारण सही न हो तो बच्चे के पूरे अस्तित्व का ही मखौल बना दिया जाता है। कैसे बोल रहे हो, कैसे पढ़ रहे हो, ये वाक्य उस के स्कूली जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाते हैं। कक्षा में भाषा शिक्षण के अन्य कौशल इस उच्चारण कौशल (??) के सामने गौण हो जाते हैं। यह आलेख इन्हीं सब अनुभवों की उपज है।

सन्दर्भ

पठन - एक मनोभाषिक अनुमान लगाने का खेल - पढ़ना यानी समझना (एनसीईआरटी)

रमाकान्त अग्निहोत्री, *बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता – 2*

भारती पंडित दो दशक से स्कूली शिक्षा में अध्यापन करती रही हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन भोपाल (मध्यप्रदेश) में कार्यरत हैं। सम्पर्कः bharti.pandit@azimpremjifoundation.org